समुदाय और संरक्षण

भारत में समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र

KALPAVRIKSH
कल्पवृक्ष

लेखक : नीमा पाठक, आशीष कोठारी, तसनीम बालासिनोरवाला, ब्रायन बुषली

समुदायों द्वारा वनों का संरक्षण

मेंढा (लेखा) गांव, ज़िला गड़चिरोली, महाराष्ट्र के गोंड समुदाय के लोगों ने २ दशकों पहले १८०० हैक्टेयर क्षेत्र का संरक्षण शुरू किया। संरक्षण के लिए उठाए गए कुछ कदम थे :

- पेपर मिल के लिए जंगलों से बांस कटान रोकना।
- जंगलों को आग लगने से बचाना।
- जंगल से प्राकृतिक संसाधनों का नियंत्रित व ज़िम्मेदारी पूर्वक निकास करना।
- ग्राम सभा की आज्ञा के बिना जंगल से किसी वस्तु का निकास न करना।
- प्राकृतिक संसाधनों, खास तौर पर वृक्षों को सिर्फ घरेलु ज़रूरतों के लिए इस्तेमाल करना।
- अन्य वनोपजों का संतुलित व नियंत्रित निकास करना।

इन जंगलों में अनेक प्रकार के वन्यजीव पाए जाते हैं। इनमें बेहद संकटग्रस्त गिलहरी की प्रजाति भी है। मेंढा के इस प्रयास से पड़ोसी गांवों को भी प्रेरणा मिली है और वे भी अब अपने जंगलों की सुरक्षा कर रहे हैं।

उत्तराखंड के जरधारगांव गांव के लोग भी दो दशकों से ६००–७०० हैक्टेयर जंगल की सुरक्षा कर रहे हैं। साथ ही, उन्होंने सैंकड़ों फसलों को पुनर्जीवित किया है, और खेती व जंगल की जैवविविधता के बीच परस्पर रिश्ते को कायम रखा है।

इसी राज्य में मक्कू गांव जैसी वन पंचायतों के पारंपरिक प्रयास ऊंचे पहाड़ों के घास मैदानों व जंगलों में तेंदुए, भालू व अन्य जानवरों का संरक्षण करते आए हैं।

शंकरघोला, असम के लोग सुनहरे लंगूर के प्राकृतिक निवास वाले जंगलों का संरक्षण कर रहे हैं।

उड़ीसा के हज़ारों गांवों में सामुदायिक संरक्षण प्रयासों के ज़रिए कई हज़ार हैक्टेयर जंगलों का संरक्षण व पुनर्जनन किया जा रहा है। इसमें डांगेझेरी का वो जंगल भी शामिल है जिसे पूरी तरह से महिलाओं ने संभाला हुआ है।

नागालैंड के आदिवासी समुदायों द्वारा बहुत से क्षेत्रों में वन व वन्यजीवों का संरक्षण किया जा रहा है। इसमें खोनोमा, लुहज़ुपह, चिज़ामी, व सेंदेन्यू जैसे गांव शामिल हैं। इन प्रयासों में अक्सर पारंपरिक व सरकारी, दोनों प्रकार के कानूनों का सहारा लिया जाता है। इनमें से अधिकतर क्षेत्र को समुदायो ने अभ्यारण्य घोषित किया है। मणिपुर राज्य में चूरचंदपुर ज़िले के तोकपा काबुई गांव मे रोनमई समुदाय ने लोकटक झील के आसपास ६०० हैक्टेयर क्षेत्र को संरक्षित किया है। ये समुदाय द्वारा संरक्षित क्षेत्र कई दुर्लभ पक्षियों की प्रजातियों को शरण देते हैं, जैसे *ब्लिथ्स ट्रैगोपैन, ग्रे सिबिया, ब्यूटिफुल सिबिया, ग्रे पीकाक फैज़ेंट, रूफस नैक्ड हौर्नबिल* व *व्हाईट नेप्ड यूहिना*। गांव वालों ने अन्य दुर्लभ प्रजातियों की मौजूदगी भी बताई है, जैसे *स्पौटेड लिन्सांग*, बाघ, तेंदुआ, जंगली कुत्ता, *स्टम्प टेल्ड मकैक* व एशियाई काला भालू।

तरुण भारत संघ संस्था की मदद से राजस्थान के अलवर ज़िले के कई गांवों ने पानी का संरक्षण और जंगलों का पुनर्जनन किया है। भांवता–कोलयाला में स्थानीय समुदायों ने लोक वन्यजीव अभ्यारण्य भी घोषित किया है।

उपरोक्त उदाहरणों के अतिरिक्त, अनेक सामाजिक आंदोलनों ने भी पर्यावरण की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है – उदाहरण के तौर पर खनन व बांध परियोजनाओं से आजीविकाओं व पर्यावरण को हो रहे नुकसान के विरुद्ध आदिवासी आंदोलन।

[1] समुदाय द्वारा संरक्षित क्षेत्रों के विषय में कल्पवृक्ष एक संकलन प्रकाशित करने की प्रक्रिया में है। इस संकलन या डायरैक्ट्री आफ कम्यूनिटि कन्ज़र्वड एरियाज़ में २२ राज्यों से ऐसे लगभग १३० क्षेत्रों के उदाहरण हैं और इन राज्यों में समुदाय द्वारा संरक्षित क्षेत्रों की ऐतिहासिक और आज की स्थिति का जायज़ा लिया गया है।

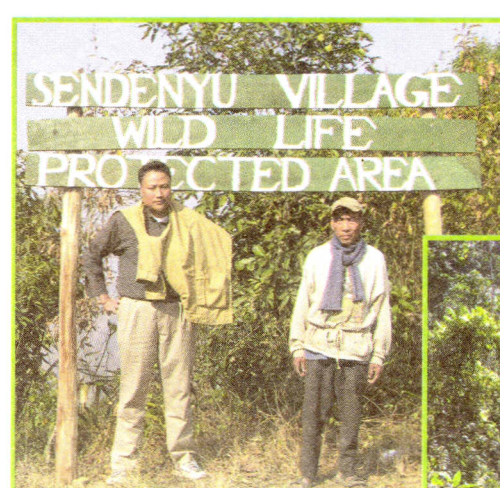

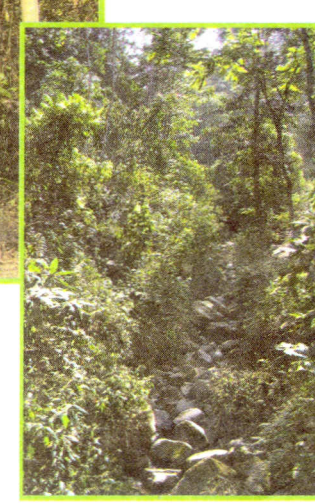

दाएं तरफ उपर
नागालैंड के सेंदेन्यू गांव के मुख्या अपने संरक्षित क्षेत्र के बाहर

दाएं तरफ नीचे
नागालैंड के चिज़ामी गांव के संरक्षित क्षेत्र

पृष्ठ ३
उड़ीसा के डांगेझेरी गांव की महिलाओं द्वारा गठित वन सुरक्षा समिति की सदस्यायें

मुख पृष्ठ
उड़ीसा के बुगुडा गांव में स्वच्छन्द विचरते हिरण

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र क्या हैं?

आम तौर पर ये माना जाता है कि जैवविविधता का संरक्षण केवल सरकार द्वारा प्रबंधित संरक्षित क्षेत्रों में ही हो सकता है। इन अभ्यारण्यों की परिकल्पना मनुष्यों की उपभोक्ता के समुद्र में संरक्षण के लिए आरक्षित द्वीपों के रूप में की जाती है। ऐसे द्वीप जहां किसी भी प्रकार का मानवीय प्रभाव – संरक्षण के लिए हानिकारक माना जाता है। लेकिन इस मान्यता को चुनौती देते हुए, पूरे विश्व में ऐसे हज़ारों 'अनौपचारिक' संरक्षित क्षेत्र हैं, जिन्हें आम लोग बरसों से चलाते आए हैं। सदियों से आदिवासी, पलायनरत व स्थानीय समुदायों ने विभिन्न आर्थिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक कारणों से कई प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों और प्रजातियों का संरक्षण किया है। आज भी विश्व में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं।

जैवविविधिता की दृष्टि, पारिस्थितिकीय सेवाएं की दृष्टि, व स्थानीय आजीविकाओं व सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से महत्वपूर्ण ऐसे क्षेत्र, जिनका आदिवासी व स्थानीय समुदायों स्वेच्छा से, अपने पारंपरिक कानूनों व अन्य असरदार तरीकों से संरक्षण कर रहे हो – ऐसे क्षेत्र को हम समुदाय द्वारा संरक्षित क्षेत्र कह सकते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में अनेक ऐसे उदाहरणों के बारे में लिखा जा चुका है, पर अनेक ऐसे क्षेत्र अभी भी हैं जिन के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इन प्रयासों में शामिल हैं, ऐसे क्षेत्र जिन्हें परंपरागत रूप से या धार्मिक कारणों से संरक्षित रखा जा रहा है – जहां लोगों को फिर से अपने प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए प्रोत्साहित किया गया और ऐसे क्षेत्र जहां लोग विनाशकारी विकास परियोजनाओं से प्राकृतिक वनों को बचा रहे हैं। संरक्षण व सतत इस्तेमाल की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से परिपूर्ण ये समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र औपचारिक रूप से गठित संरक्षण क्षेत्रों से बहुत पुराने हैं, पर फिर भी उन्हें अक्सर नकारा जाता रहा है और इसी कारण आज कई ऐसे क्षेत्र खत्म होने की कगार पर खड़े हैं।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों से हमें वन्यजीव संरक्षण के प्रयासों में आने वाली कठिनाइयों से निपटने और सरकारी संरक्षित क्षेत्रों के प्रबंधन के लिए आवश्यक सीख मिल सकती है।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों की क्या विशेषताएं हैं?

हालांकि सभी समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र अपने आप में अलग हैं, फिर भी इनमें कुछ समानताएं देखी जा सकती हैं :

संरक्षण के साथ–साथ स्थानीय लोग इन क्षेत्रों पर आजीविका, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक कारणों से निर्भर हैं।

प्रबंधन, निर्णय प्रणाली व क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की मुख्य भूमिका हैं।

प्रयास प्रारंभ करने के उद्देश्य चाहें कुछ भी रहे हों, उनके कारण प्राकृतिक आवासों, प्रजातियों, पारिस्थितिकीय सेवाओं व उनसे जुड़े सांस्कृतिक मूल्यों का भी संरक्षण होता है।

संरक्षण के मुख्य उद्देश्यों में से कुछ हैं :

१ आजीविकाओं के स्रोतों को सुनिश्चित करना।
२ जल व प्राकृतिक संसाधनों को वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं के लिए सुनिश्चित करना।
३ धार्मिक व आध्यात्मिक भावनाओं को बनाए रखना।
४ पारंपरिक रीति–रिवाज़ बनाए रखना।
५ वन्यजीवों को सुरक्षा देना।

समुदायों द्वारा जलीय व तटीय क्षेत्रों व पानी में रहने वाले जीव जंतुओं की पारिस्थितिकी का संरक्षण

उत्तर प्रदेश, जलीय क्षेत्रों (जैसे झीलों, तालाबों आदि) के संरक्षण की परंपरा का पुराना केन्द्र रहा है। अलीगढ़ ज़िले के अमरवेरा गांव में एक जलाशय है जो परंपरागत रूप से सिंचाई व मछली-पालन के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है। इस जलाशय में बड़ी संख्या में प्रवासी पक्षी आते हैं जिनका गांव वाले काफी ध्यान रखते हैं।ईटा ज़िले की पटना झील में १ लाख तक की संख्या में जलपक्षी निवास करते हैं। पारंपरिक रूप से इस तालाब को पवित्र मान कर इसकी रक्षा की जाती रही है। १९९१ में इस झील को सरकार द्वारा एक अभ्यारण्य घोषित कर दिया गया। खेरी ज़िले का सरेली गांव १००० से भी ज़्यादा *ओपनबिल स्टार्क* पक्षियों के प्रजनन के लिए एक सुरक्षित स्थल है – गांव वाले इन पक्षियों को बढ़िया वर्षा ऋतु और अच्छी फसल का सूचक मानते हैं। और चूंकि ये घोंघे को खाते हैं, गांव वाले इन्हें बीमारियों से बचने के लिए भी लाभदायक मानते हैं।

भारत भर के सैंकड़ों गांवों में लोगों ने बगुलों की विभिन्न प्रजातियों के प्रजनन स्थलों को बचाए रखा है। कर्नाटक का कोक्करे बेलूर, गांव एक ऐसा ही गांव है। गांव वाले इस पक्षी के आगमन को अच्छी पैदावर का सूचक मानते हैं और इनके बीट को खेतों में खाद के रूप में इस्तेमाल करते हैं। मैसूर ऐमेच्योर नेचरलिस्ट नामक एक संस्था युवाओं के माध्यम से इस परंपरा को चलाए रखने के लिए सहयोग कर रही है।

तमिल नाड में, ७०० हैक्टेयर में फैला चित्रांगुडी टैंक एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह टैंक वर्ष १८०० में बनाया गया था। यहां *स्टौर्क, आइबिस, हैरन, ईग्रेट, कौरमोरैंट* व अन्य प्रवासी पक्षी नित्य रूप से आते हैं। गांव वाले कोई भी शिकार या अंडों की चोरी नहीं होने देते हैं। वे दीवाली पर पटाखे तक नहीं जलाते हैं और जलाशय से सिर्फ घरेलू ज़रूरत के लिए ही मछली पकड़ी जाती है।

उड़ीसा में चिलिका झील के आस-पास के गांवों जैसे मंगलाजोड़ी में मछवारे हज़ारों जल पक्षियों की सुरक्षा कर रहे हैं। इन गांवों ने '*एक्वाकल्चर*' जैसी विनाशकारी परियोजनाओं को रोकने में भी सरकारी अफसरों का सहयोग किया हैं। कुछ साल पहले ये गांव पक्षियों के शिकार पर आर्थिक रूप से निर्भर थे। आज ये गांवों में आय के वैकल्पिक साधनों जैसे कि पर्यटन व सतत् मछली-पालन को बढ़ावा दिया जा रहा है।

इसी तरह तटीय प्रवास स्थलों के संरक्षण के और भी कई उदाहरण हैं – जैसे मैनग्रोव पेड़ों को गांव वालों द्वारा लगाना व उनकी रक्षा करना (उड़ीसा में), कछुओं व उनके अंडों की रक्षा करना (उड़ीसा, गोवा, केरल में) आदि।

ऐसे स्थानीय संरक्षण के प्रयासों में अक्सर समुदायों के प्रशंसनीय संघर्ष रहे हैं जिससे देशभर में तटीय व जल पारिस्थितिकीय व्यवस्थाओं को विनाशकारी विकास परियोजनाओं से बचाने के लिए दबाव बन रहा है। इनमें शामिल हैं – बाज़ारीकृत मशीनी मछली पकड़ने पर रोक व कोस्टल रैगुलेशन ज़ोन नोटिफिकेशन (CRZ) को लागू करने की मांग।

सामुदायिक प्रयास अपने क्षेत्र की विविध ज़रूरतों और परिस्थितियों के अनुकूल ढले होते हैं। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के बीच इस्तेमाल के तरीकों व प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में काफी फर्क होता है। ये प्रक्रियाएं समुदायों की अपनी विशेषताओं, उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों व अन्य स्थानीय, राजनैतिक और आर्थिक कारणों से स्वरूप लेती हैं और एक स्थान पर चल रहे प्रयास को उसी तरह दूसरे स्थानों पर लागू करना हर स्थिती में उचित या संभव नहीं हो सकता है।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को मौलिक रूप से ३ श्रेणियों में बांटा जा सकता है (जिसमें कई क्षेत्रों में मिलेजुले लक्षण हो सकते हैं):

१ स्थानीय लोगों द्वारा स्वत: प्रारंभ किए गए व चलाए जा रहे प्रयास।

२ सामाजिक संस्थाओं द्वारा स्थानीय लोगों के साथ मिलकर चलाए जा रहे नए प्रयास।

३ सरकारी परियोजना के तहत प्रारंभ हुए ऐसे प्रयास जिनमें स्थानीय लोगों की अहम भूमिका हो।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र क्यों आवश्यक हैं?

वन्यजीव व जैवविविधता के संरक्षण की दृष्टि से ऐसे क्षेत्र :

पारिस्थितिक व जैव विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों की सुरक्षा करते हैं।

दुर्लभ प्रजातियों के पौधे व जानवरों के लिए संरक्षित क्षेत्र बनाते हैं।

पर्यावरण के फायदों, खासकर पानी के बहाव व उनके स्रोतों को बनाए रखते हैं।

किसानों के खेतों में पनप रही और प्राकृतिक जैव-विविधता व वन्यजीवन के पारस्परिक संबंध को समझने में मदद करते हैं और उसको बढ़ावा देते हैं।

पारंपरिक स्थानों को जीवित रखने और पनपने में मदद करते हैं।

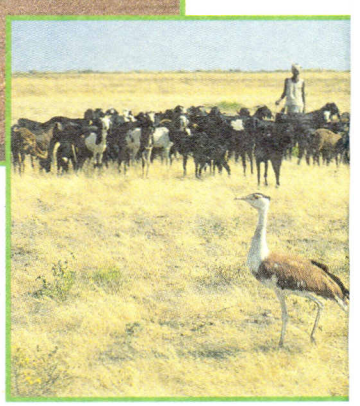

दाएं तरफ उपर
राजस्थान के खीचन गांव हर साल आनेवाले डेमोइसैल क्रेन पक्षियों

दाएं तरफ नीचे
ग्रेट इन्डयन बर्स्टड किसानों के खेतों व गोचरों में

पृष्ठ ५
पक्षियों के साथ जीवन बिताते अपनी दिनचर्या में व्यस्त कर्नाटक का कोक्करे बेलूर, गांव के लोग

विनाशकारी विकास के खिलाफ स्थानीय समुदायों के संघर्ष को स्वरूप देते हैं।

पारंपरिक व वैधानिक कानूनों के जुड़ाव से संरक्षण प्रणालियां बनाने की राह दिखाते हैं।

संरक्षित क्षेत्रों के संचालन व स्थानीय लोगों के बीच के विवाद की स्थितियां सुलझाने के कारगर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

स्थानीय समुदायों की दृष्टि से ऐसे क्षेत्र :

आजीविकाओं को सुनिश्चित करने के अवसर प्रदान करते हैं।

जल संसाधनों और गैर-काष्ठीय वन संसाधनों के सतत् दोहन व बिक्री और ईको-पर्यटन के माध्यम से वित्तीय फायदे स्थानीय लोगों को मिलने की संभावना बढ़ाते हैं।

अपने जल, जंगल, ज़मीन, व जीवन पर असर डाल रही विकास व राजनीतिक प्रक्रियाओं के विषय में गांव वालों को जानकारी बढ़ाने के अवसर प्रदान करते हैं।

स्थानीय लोगों को उनके जीवन पर असर डालने वाली प्रक्रियाओं को प्रभावित करने के लिए उनकी क्षमताएं बढ़ाने में मदद करते हैं।

लोगों को संगठित कर उन्हें अपने विकास के लिए स्थानीय स्तर पर ज़्यादा असरदार विकास प्रक्रियाएं बनाने के अवसर देते हैं।

लोगों के बीच ज़्यादा सामाजिक व आर्थिक बराबरी के अवसर देते हैं।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों से जुड़े कुछ मुद्दे :

मालिकाना हक़/अधिकार

कोई भी समुदाय तभी प्राकृतिक संपदा का संरक्षण कर सकते हैं जब उन्हें उन संसाधनों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी व मालिकाना अधिकार का एहसास हो। इसके लिए उनका अपने संसाधनों के साथ परस्पर आर्थिक व सांस्कृतिक जुड़ाव होना ज़रूरी है। ज़्यादातर समुदायों द्वारा संरक्षण के प्रयास वहीं सफल हो पाते हैं जहां उस क्षेत्र पर समुदाय को पूर्णतया कानूनी तौर पर मालिकाना अधिकार प्राप्त हैं – जैसे कि, नागालैंड व उत्तराखंड के कुछ क्षेत्रों में। या फिर जहां स्वभाविक रूप से ही संसाधन लोगों के नियंत्रण में हों – जैसे कि, उड़ीसा व महाराष्ट्र के कई जंगल जो समुदायों द्वारा संरक्षित हैं।

एक अनुकूल सामाजिक व्यवस्था

संरक्षण की प्रक्रिया किसी भी स्थान की सामाजिक व्यवस्था से गहराई से जुड़ी होती है। जहां एक ओर सामूहिक संरक्षण प्रयासों से सामाजिक सुधार के रास्ते खुलते हैं (जैसे बराबरी व सशक्तिकरण) वहीं दूसरी ओर सामाजिक बदलाव से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को भी बढ़ावा मिल सकता है। ये समझना ज़रूरी है कि संरक्षण को किसी स्थान की और वहां के लोगों की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक प्रक्रियाओं से अलग नहीं किया जा सकता है।

एक सचेत, पारदर्शी व भेदभाव न करने वाली निर्णय प्रणाली

एक सफल व सतत सामूहिक प्रयास के लिए एक पारदर्शी व भेदभाव न करने वाली निर्णय प्रणाली, जिसमें सभी को शामिल होने के अवसर हों – अत्यंत आवश्यक है। साझे

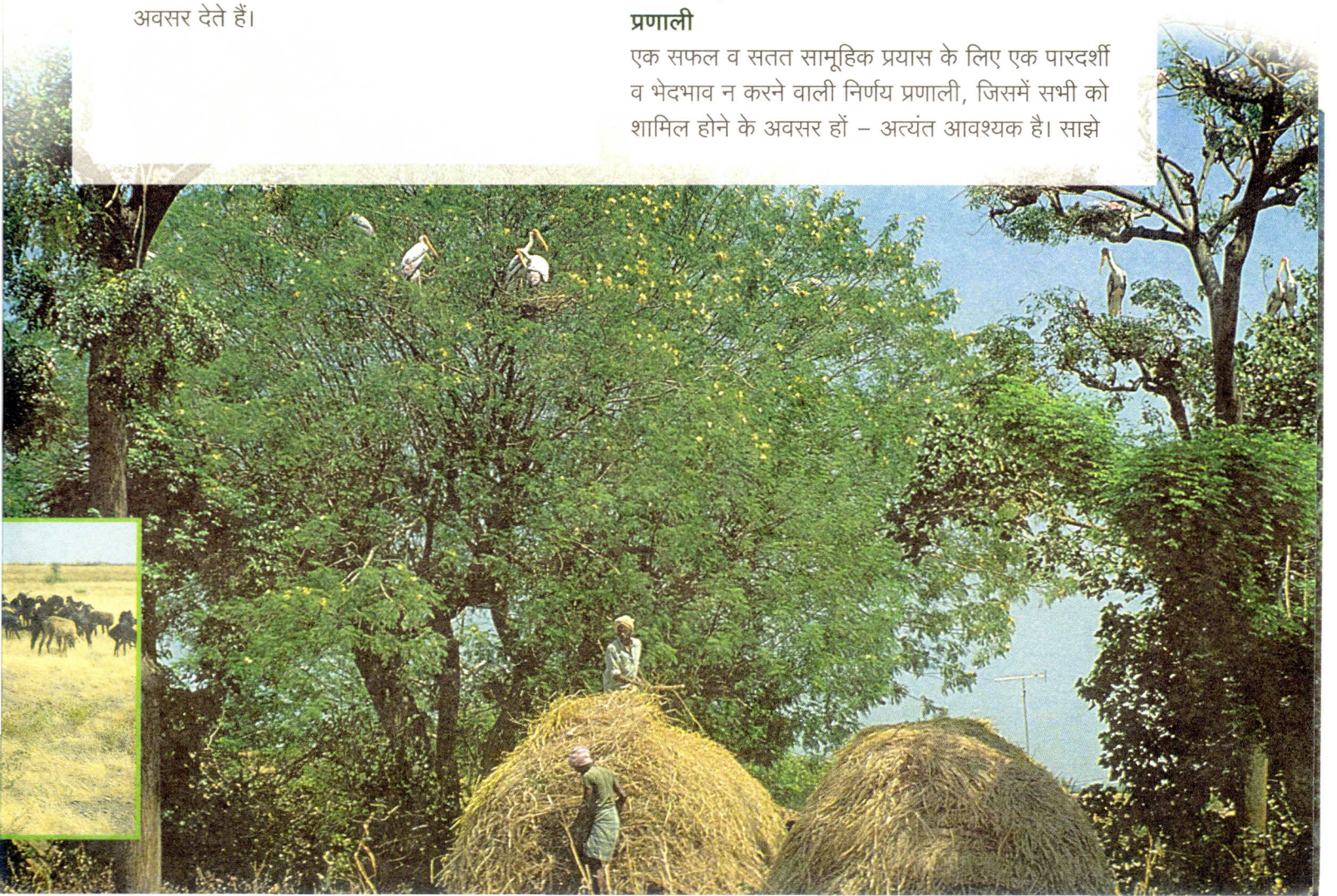

समुदायों द्वारा विभिन्न प्रजातियों का संरक्षण

कोलवीपालम (केरल), गलजीबाग, मोरजिम (गोवा) और रुशिकुल्या (उड़ीसा) में समुद्री कछुओं के अंडों, अंडों से निकले उनके बच्चों व उनके प्रजनन स्थलों का संरक्षण हो रहा है। कुछ वर्ष पहले, रुशिकुल्या के मछियारे इन अंडों को खाने या बेचने के लिए इकट्ठा करते थे। स्थानीय युवकों को जब पता चला कि ये *ओलिव रिडली* कछुओं की प्रजाति पृथ्वी से लुप्त होने के कगार पर है, तो उन्होंने इनके अंडे इकट्ठे करने पर रोक लगा दी। इन युवकों ने रुशिकुल्या सी टरटल प्रोटैक्शन कमेटी नाम से अपना पंजीकरण करवाया और एक अध्ययन केन्द्र भी बनाया। उनके संरक्षण प्रयास का असर पड़ोसी गांवों, जैसे गोखरकुड़ा, पर भी पड़ा। वर्ष २००६ में १ लाख से ज़्यादा कछुओं ने रुशिकुल्या में अंडे दिए।

लोकटक झील (मणिपुर) के आसपास के गांवों से युवक संगठनों ने अत्याधिक खतरे में गिने जाने वाले सांगाई हिरन (*ब्रो ऐन्टलर्ड डीयर*) के संरक्षण के लिए सांगाई प्रोटैक्शन फोरम की स्थापना की। यह हिरन इस जलाशय में आमतौर से पाया जाता है। यह संगठन केबुल लामजाओ नैशनल पार्क (जो इस झील के बीचों बीच है) के प्रबंधन में भी शामिल है।

सांगती वैली (अरुणाचल प्रदेश) के बौद्ध मोरपा समुदाय परंपरागत रूप से *ब्लैक नैक्ड क्रेन* के साथ रहते आए हैं। यह पक्षी भारत में बहुत कम संख्या में पाया जाता है। इन पक्षियों की कीड़े खाने की प्रवृत्ति के कारण स्थानीय समुदाय इन्हें चावल की अच्छी फसल का सूचक मानते हैं।

खीचन, राजस्थान में ग्रामवासी सर्दीयों में आने वाले लगभग १०,००० *डेमोइसैल क्रेन* पक्षियों को शरण देते हैं। इन पक्षियों को दाना खिलाने के लिए गांव वाले लाखों रुपया खर्च करते हैं।

राजस्थान का बिश्नोई समाज वन्यजीवों व पेड़ों के संरक्षण की अपनी परंपरा को आज भी चला रहे हैं। पड़ोसी राज्य पंजाब में बिश्नोइयों की निजि ज़मीन पर अबोहर सैंक्चुरी घोषित कर दी गई है। बिश्नोई समुदाय के क्षेत्रों में *ब्लैक बक* व चिंकारा बड़ी संख्या में पाये जाते हैं।

कुछ और भी जगह हैं जहां *ब्लैक बक* को घरेलू पालतू जानवरों के साथ चरते देखा जा सकता है। बुगुडा गांव, गंजाम ज़िला, उड़ीसा के लोग सदियों से *ब्लैक बक* का संरक्षण करते आए हैं। ५० साल पहले, गांव के कुछ बुज़ुर्गों ने फिर से संरक्षण प्रयास तीव्र किया जब उन्हें लगा कि बाहरी लोगों द्वारा शिकार की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। आज कई खेतों में पानी की कमी व ब्लैक बक द्वारा नुक्सान के कारण फसल नहीं ली जाती है। पर इस प्रजाति के संरक्षण की ओर उनकी प्रतिबद्धता दृढ़ है। बुगुड़ा को हाल ही में संरक्षण के लिए उड़ीसा के मुख्यमंत्री से प्रशस्तिपत्र व पुरस्कार भी मिला है।

पेडुलुपल्लै गांव, ज़िला कुडप्पा में *पेन्टेड स्टार्क, व्हाईट आईबिस* और *कौरमोरैंट* पक्षियों का संरक्षण किया जा रहा है, जो एक शतक से भी अधिक समय से यहां अंडे देने के लिए आते हैं। नैल्लोर ज़िले के नेल्लापट्टू और वेदुरापट्टू में पुराने समय से *ओपन बिल्ड स्टौर्क, व्हाईट आईबिस* व बगुले आते रहे हैं। इनमें से कुछ पड़ोस में पुलीकट लेक में भोजन करते हैं और इमली के पेड़ों में घोसले बनाते हैं। गांव वाले इनकी देख-रेख करते हैं, महिलाएं घायल व घोंसलों से गिरे हुए चूज़ों को पालकर नज़दीक के तिरुपति नैशनल पार्क भेज देती हैं। पारिस्थितिकीय रूप से महत्वपूर्ण, नेल्लापट्टू को १९९७ में सरकार द्वारा वन्यजीव अभ्यारण्य घोषित कर दिया गया था।

दाएं
जंगल के मुद्दों पर चर्चा करती मेंढा (लेखा) गांव की ग्राम सभा

पृष्ठ ७
महाराष्ट्र के मेंढा (लेखा) गांव का संरक्षित क्षेत्र

कोष का गलत इस्तेमाल, या अन्य प्रकार की सामाजिक अबराबरी, अक्सर संरक्षण प्रयासों के लिए खतरा पैदा करती है। सफल सामुदायिक प्रयास, न्यायपूर्ण निर्णय प्रक्रिया और खुले लेखे-जोखे के आधार पर काम करते हैं, जहां सभी रेकार्डों को नियमित रूप से गांव की आम सभाओं में प्रस्तुत किया जाता है। ऐसी खुली प्रक्रियाओं के चलते, समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों के माध्यम से कई मुश्किल मुद्दों – जैसे अतिक्रमण, जंगलों में आग, शिकार व लकड़ी की चोरी – के समाधान के रास्ते निकले हैं।

बाहर के लोगों व संस्थाओं की भूमिका

बहुत से समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों में, गांव वालों की मांग रही है कि सरकारी अफसर या गैर सरकारी संस्थाएं लोगों के साथ मिलकर संसाधनों का संचालन करें। यहां लोगों को राजनैतिक व बाज़ारी दबावों के सामने अकेले 'सब कुछ खुद करने' की सीमाओं का एहसास है। ऐसे समुदायों की अपेक्षा है कि बाहर के लोगों व संस्थाओं की भूमिका एक सहायक की हो न कि दमनकारी शासक की। इन भागीदारों से ये भी उम्मीद रहती है कि वे चर्चाओं में अपना योगदान करें जिससे कि जानकारी बढ़े व बाहरी दुनिया के परिपेक्ष भी समझ आएं जिससे निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता मिले।

एक सशक्त स्थानीय नेतृत्व

ज़्यादातर सामूहिक संरक्षण प्रयासों में स्थानीय नेतृत्व की अहम भूमिका रही है। ऐसे लीडर, चाहें वे एक हों या अनेक, अक्सर समूचे समाज के भले के कामों के लिए तैयार रहते हैं। वे चाहें पारंपरिक या राजनैतिक नेता न हों, पर वे समाज की नब्ज़ पहचानते हैं तथा लोगों को बदलाव के लिए तैयार करते हैं। अक्सर इसमें उन्हें काफी भारी निजि कीमत तक चुकानी पड़ती है। जब ऐसे लीडर इस काम को छोड़ जाते हैं तो लोगों को ऐसे सक्रिय व प्रेरणादायक नेता ढूंढने में परेशानी का सामना करना पड़ता है। इसलिए ज़रूरी है कि सहयोगी संस्थाएं ऐसे सशक्त स्थानीय कार्यकर्ताओं का सहयोग करें (उनकी स्थानीय संस्थाओं या सामाजिक रिश्तों को छीने या बदले बिना)। और स्थानीय लोगों को चाहिए कि वे निरंतर नए व प्रभावकारी नेतृत्व तैयार होने का सामाजिक परिवेश बनाएं रखें।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों के सामने चुनौतिया

बाहरी चुनौतियां (जो संरक्षण-रत समुदायों से बाहर के हैं) :

हमारी शिक्षा प्रणाली में स्थानीय प्राकृतिक व सांस्कृतिक मूल्यों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। जिसके कारण युवा पीढ़ी स्थानीय संस्कृति व पारिस्थितिकी से अलग होती जा रही है।

प्रबल धर्मों के बढ़ते असर के कारण स्थानीय नैतिकताओं व पारंपरिक संरक्षण की गतिविधियों पर गंभीर असर पड़ा है (खासकर आदिवासी समुदायों में)।

केन्द्रिय राजनैतिक तंत्र अक्सर स्थानीय व परंपरागत प्रबंधन प्रक्रियाओं की अवहेलना करते हैं। यहां तक कि भली मंशा वाली सरकारी परियोजनाओं भी अक्सर स्थानीय अधिकारों व दायित्वों को दबाकर उनके ऊपर नए ढांचे थोप देतें हैं। अत: जब सरकार विकेन्द्रीकरण का प्रयास करती है – स्थानीय संस्थाओं, नियमों व कानूनों को मज़बूत करने के बजाए ऐसे प्रयास दूर बैठे सत्ताधारियों के बदले स्थानीय सत्ताधारियों के हाथ में बागडोर सौंपने में मदद करते हैं।

आर्थिक नीतियों के वैश्वीकरण और बाज़ारीकरण की प्रक्रियाओं के कारण समुदायों को कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है – खासकर स्थानीय व विकेन्द्रीकृत आर्थिक ढांचों व बाज़ारों को स्थापित करने में । इसके कारण उनके अपने आर्थिक भविष्य पर भी असर पड़ता है।

जिन समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों में बाज़ार में बेचने लायक संसाधन उपलब्ध हैं (जैसे, लकड़ी, खनिज व जानवर) वहां अक्सर बाज़ारी तत्वों, ज़मीन हड़पने वालों, संसाधनों की तस्करी करने वालों का खतरा बढ़ जाता है। इन प्रक्रियाओं के रहते स्थानीय मूल्यों को खतरा बढ़ जाता है और लोगों की अपेक्षाएं भी बढ़ जाती हैं।

जहां संरक्षित क्षेत्र ऐसी ज़मीन का हिस्सा हैं जो विकास परियोजनाओं के लिए चिन्हित हैं – जैसे, बिजली बनाने वाले बांध या खानें और जहां स्थानीय लोगों से इस विषय में कोई चर्चा भी नहीं की गई है – वहां तो सीधे व प्रत्यक्ष खतरे नज़र आते ही हैं।

वर्तमान कानूनी परिपेक्ष व राजनैतिक तंत्र में समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों की कोई पहचान नहीं है। इसके कारण स्थानीय व पारंपरिक सामुदायिक प्रयासों में बाहरी दबावों के खिलाफ लड़ने की शक्तियां कम हो जाती हैं।

कुछ पारिस्थितिकीय मुद्दों पर सरकारी व संरक्षणकर्ताओं के दृष्टिकोण अलग हैं – जैसे कि हर प्रकार की झूम की खेती को पर्यावरण के लिए हानिकारक मानना – ऐसी सरकारी मान्यताओं से स्थानीय प्रक्रियाओं और उनके स्वशासन पर नकारात्मक असर पड़ता है।

आंतरिक चुनौतियां (जो संरक्षण-रत समुदायों के अंदर से उपजते हैं) :

जहां निर्णय सामाजिक और राजनैतिक रूप से सशक्त वर्गों या व्यक्तियों द्वारा ही लिए जाते हैं (पुरुष ज़मींदार, 'उच्च' जातियां) वहां समुदाय अक्सर काफी विभाजित हो जाते हैं। जिसमें अन्य कमज़ोर वर्गों पर असर क्या पड़ेगा उसका ध्यान नहीं रखा जाता (जैसे कि महिलाएं, भूमिहीन, दलित आदि)। ऐसे सत्ताधीशों द्वारा चलाए जा रहे समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र, शुरुआत में चाहें सफल नज़र आएं लेकिन वे बहुत लंबे समय तक कायम नहीं रह पाते हैं, खासकर क्योंकि इनमें विभिन्न सामाजिक स्तरों में असंतोष फैल जाता है।

स्थानीय आर्थिक तंत्र में बाज़ार की भूमिका बढ़ती जा रही है। इसके कारण पारंपरिक परस्पर निर्भरता के मूल

धार्मिक भावनाओं के कारण समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र

धार्मिक भावनाओं के कारण – प्राणियों, पहाड़ों, झीलों, वनों का संरक्षण करना भारत में एक आम बात है। इस प्रकार के क्षेत्रों में कई दुर्लभ प्रजातियां व विशिष्ट जैवविविधता पाई जाती है। इन क्षेत्रों से लोगों की धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, स्वास्थ्य व मनोवैज्ञानिक ज़रूरतें भी पूरी होती हैं।

राजस्थान के रेगिस्तानी (ओरान) क्षेत्रों में ग्राम सभाएं धार्मिक कारणों से संरक्षित क्षेत्रों का संचालन करती हैं। कुछ जगहों पर घरेलू मवेशियों को सीमित रूप से चरने दिया जाता है। ओरान क्षेत्रों को रेगिस्तान में – (जहां पानी की हरएक बूंद कीमती होती है) – ज़मीन के नीचे पानी के स्रोतों के लिए अत्यंत आवश्यक माना जाता है। अधिकांश ओरान क्षेत्रों में, खासकर पश्चिमि राजस्थान में, खेजड़ी पेड़ की पूजा की जाती है क्योंकि वह न सिर्फ मिट्टि में नाईट्रोजन की मात्रा को बढ़ाते हैं बल्कि सूखे और अकाल के समय इसकी छाल को आटे में मिलाकर खाया जा सकता है।

मेघालय की खासी पहाड़ियों में खासी समुदाय प्रकृति की आराधना करते हैं और अक्सर जैवविविधता की रक्षा करते हैं। इसका सीधा असर वहां के वृक्षों, जंगलों व नदियों पर पड़ता है। खासी लोगों का मानना है कि जो भी वनों को नुक्सान पहुंचाएगा वो जीवित नहीं रहेगा और यह भी कि उनके पूज्य जानवर, जैसे बाघ, उनके लिए उन्नति और खुशियों के सूचक हैं। वास्तव में थाइआनिंग के लोग मानते हैं कि उनके पूवर्जों द्वारा जंगलों के विनाश के कारण उनका शुभचिंतक (यानि कि बाघ) लुप्त हो गया है। और इसी कारण उन्हें कुछ वर्ष पूर्व औषधीय पौधों, लकड़ी, पानी व उपजाऊ मिट्टी की कमी जैसी परेशानियां झेलनी पड़ीं। मेघालय में कुल ७९ धार्मिक रूप से संरक्षित क्षेत्र रेकार्ड किए गए हैं। अक्सर ऐसे क्षेत्रों का क्षेत्रफल काफी सीमित रहता है पर मेघालय में कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनका क्षेत्रफल ५० से ४०० हैक्टेयर तक है। इसमें बहुचर्चित क्षेत्र माओफ्लांग का क्षेत्रफल ७५ हैक्टेयर है।

महाराष्ट्र में भी हज़ारों ऐसे क्षेत्र हैं जैसे कि भीमाशंकर (भीमाशंकर अभ्यारण्य के अंदर) व 'दुर्गाबाई चा किला' आदि। इनमें से कुछ आज भी लोगों द्वारा संरक्षित हैं पर अनेक अब विभिन्न प्रकार के खतरे में हैं।

पुणे ज़िले का अजीवाली गांव आध्यात्मिक व बाज़ारी महत्ता के कारण अपनी देवराय का संरक्षण व संचालन करता है। १६ हैक्टेयर का यह क्षेत्र बाघदेवी वाघजाई को समर्पित है और अपने फिशटेल पाम पेड़ के लिए मशहूर है। इन पेड़ों का विशेष उपयोग माड़ी (स्थानीय पेय) निकालने के लिए किया जाता है। इसकी बिक्री से प्राप्त पैसे को, गांव में भलाई के कामों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इस प्रक्रिया में पेड़ों को कोई नुक्सान नहीं होता और लोगों ने इस क्षेत्र से अन्य कोई भी संसाधन निकालने पर प्रतिबंध लगा रखा है।

अध्ययन से पता चला है कि मेघालय, केरल, महाराष्ट्र, तमिल नाडू, उत्तराखंड व हिमाचल प्रदेश में स्थित ऐसे देवों को समर्पित क्षेत्रों में विविध प्रकार के पेड़-पौधे व जीवजंतु पाए जाते हैं जो अन्य क्षेत्रों में दुर्लभ हो चुके हैं।

दाएं तरफ उपर

उड़ीसा के रुशिकुल्या गांव में कछुए

दाएं तरफ नीचे

समुद्री कछुओं के संरक्षण के लिये उड़ीसा के रुशिकुल्या व गोखरखुदा गांव के युवा संगठित

पृष्ठ ९

महाराष्ट्र में दुर्गाबाई चा किला नामक देवराई के घने वन

टूट रहे हैं और सामाजिक भावनाओं के बजाए अकेले ही सबकुछ पा लेने की इच्छा पनप रही है।

यह ज़रूरी नहीं है कि सभी सामुदायिक संरक्षण के प्रयास जैव-विविधता के हर घटक का संरक्षण करें – खासकर ऐसी प्रजातियों कां जिन्हें वे नहीं जानते या जिनको वे खराब मानते हैं।

कई समुदायों में आज भी शिकार करने की परंपरा है। कुछ समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों में अत्याधिक शिकार का मुद्दा आज भी हल नहीं हो पाया है।

कई समुदायों में उचित प्रबंधन क्षमताएं उपलब्ध नहीं हैं। अत: उन्हें काम काज संभालने, लेखे जोखे, बिक्री व अन्य ऐसे कामों के लिए बाहरी लागों पर निर्भर रहना पड़ता है।

अचानक सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए कई बार समुदाय तैयार नहीं होते। इसलिए ज़रूरी है कि ऐसे प्रयासों के साथ-साथ लोगों व उनकी स्थानीय संस्थाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रियाएं भी चलाई जाएं।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को मदद व सहयोग प्रदान करते समय ऊपर लिखे मुद्दों को ध्यान में रखना ज़रूरी है। लेकिन ये मान लेना कि इन मुद्दों का निवारण नहीं किया जा सकता है, संरक्षण की प्रक्रिया को गहरा धक्का पहुंचा सकता है। इन मुद्दों का निवारण आसान नहीं है पर अवश्य हो सकता है।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को भारत में किस प्रकार का सहयोग दिया जा रहा है?

हालांकि समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र सदियों से चले आ रहे हैं, आधुनिक संरक्षण प्रणालियों ने इन्हें हाल ही में कुछ मान्यता दी है। बढ़ती हुई इस मान्यता के पीछे अनेक कारण रहे हैं। उनमें से कुछ हैं :

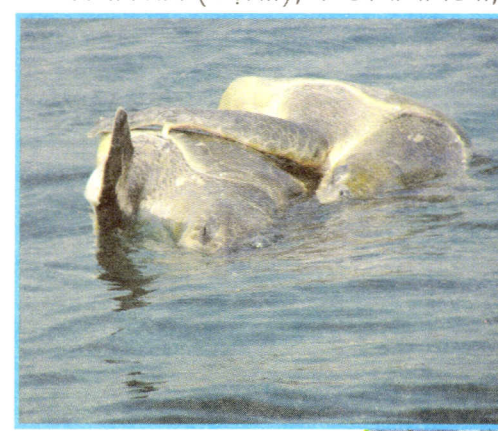

संरक्षण कर रहे समुदायों व उनके साथ काम कर रही संस्थाओं की पिछले कुछ वर्षों से लगातार ज़ारी मांग – इस मांग का समर्थन करने वाली अनेक संस्थाओं में से कुछ हैं वसुंधरा, रीजनल सैंटर फार डैवलैपमैंट कोऔपरेशन (उड़ीसा); कष्टकरी संघटना, वृक्षमित्र

(महाराष्ट्र); सेवा, विकसत (गुजरात)।

स्थानीय लोगों के संरक्षण के प्रयासों को संस्थाओं व कुछ व्यक्तियों का सहयोग – ऐसे संस्थाओं में से कुछ हैं *नेचर कन्ज़रवेशन फाउन्डेशन, वर्ल्ड वाइड फंड फार नेचर – इंडिया, वाइल्ड लाइफ ट्रस्ट आफ इंडिया,* संरक्षण, *अशोका ट्रस्ट फार रिसर्च आन ईकोलौजी एंड एन्वायरनमैंट, फाउन्डेशन फार ईकोलौजीकल सिक्योरिटि, कल्पवृक्ष, सलीम अली सैंटर फार औरनिथौलौजी एंड नेचर कन्ज़रवेशन* व भारतीय वन्यजीव संस्थान के शोधकर्ता।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों के विषय पर राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चाओं व दस्तावेज़ों द्वारा मुद्दे को ज्वलंत रखने की अनेक संस्थाओं की चेष्टा।

अनेक संस्थाओं द्वारा इन क्षेत्रों को कानूनी व अन्य विषयों में सहयोग व सहायता दिया जाना।

इन संस्थाओं द्वारा ऐसे प्रयासों के लिए और अधिक सरकारी व कानूनी सहयोग के लिए निरंतर दबाव बनाये रखना।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों के लिए कौन से कानून व नीतियां लागू की जा सकती हैं?

भारतीय वन अधिनियम (१९२७)

वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, १९७२ संशोधन २००२, २००६

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, १९६६

राष्ट्रीय वन नीति, १९८८ व संयुक्त वन प्रबंधन (सं.व.प्र.) के लिए दिशानिर्देश

पंचायती राज (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तारित) अधिनियम, १९९६ (पेसा)

जैवविविधता अधिनियम, २००२

वाईल्ड लाईफ एक्शन प्लैन, २००२–२०१६

राष्ट्रीय जैवविविधता रणनीति व योजना प्रारूप, २००४

अनुसूचित जनजाती व अन्य वनवासी (वनाधिकार मान्यता) अधिनियम, २००६

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को भारत में मान्यता व बढ़ावा देने के लिए आवश्यक कदम :

राजनैतिक व नीतिगत आवश्यकताएं :

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र और उनको चलाने वाले संस्थागत ढांचों को स्थानीय, राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर पूरा राजनैतिक सहयोग दिया जाए।

पहले से चले आ रहे समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को औपचारिक मान्यता दिया जाए व उनका दस्तावेज़ीकरण किया जाए।

समुदायों की भागीदारी से स्पष्ट दिशानिर्देश बनाए जाए, जो बाहरी सहायक (सरकारी व गैर–सरकारी) एजेंसियों को ऐसे स्थानों में सकारात्मक भूमिका निभाने के लिए सही दिशा दिखा सकें।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों व अन्य पार्टियों (जैसे, निजि व्यापारिक संगठन, बिना इजाज़त संसाधन इस्तेमाल करने वाले लोग, सरकार) के बीच मतभेद सुलझाने के लिए स्पष्ट नियम व प्रणालियां, लोगों के साथ मिलकर तैयार की जाए।

राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर लोगों के प्रयासों को मान्यता देते हुए, उनकी भागीदारी के साथ, उनके आस–पास के स्थानों व जैवविविधता के संरक्षण व नियोजन की योजना बनाए जाएं। इस प्रक्रिया में व्यापक जन–चर्चाओं व पारदर्शी जन–अदालनों की सहायता लेना लाभदायक होगा।

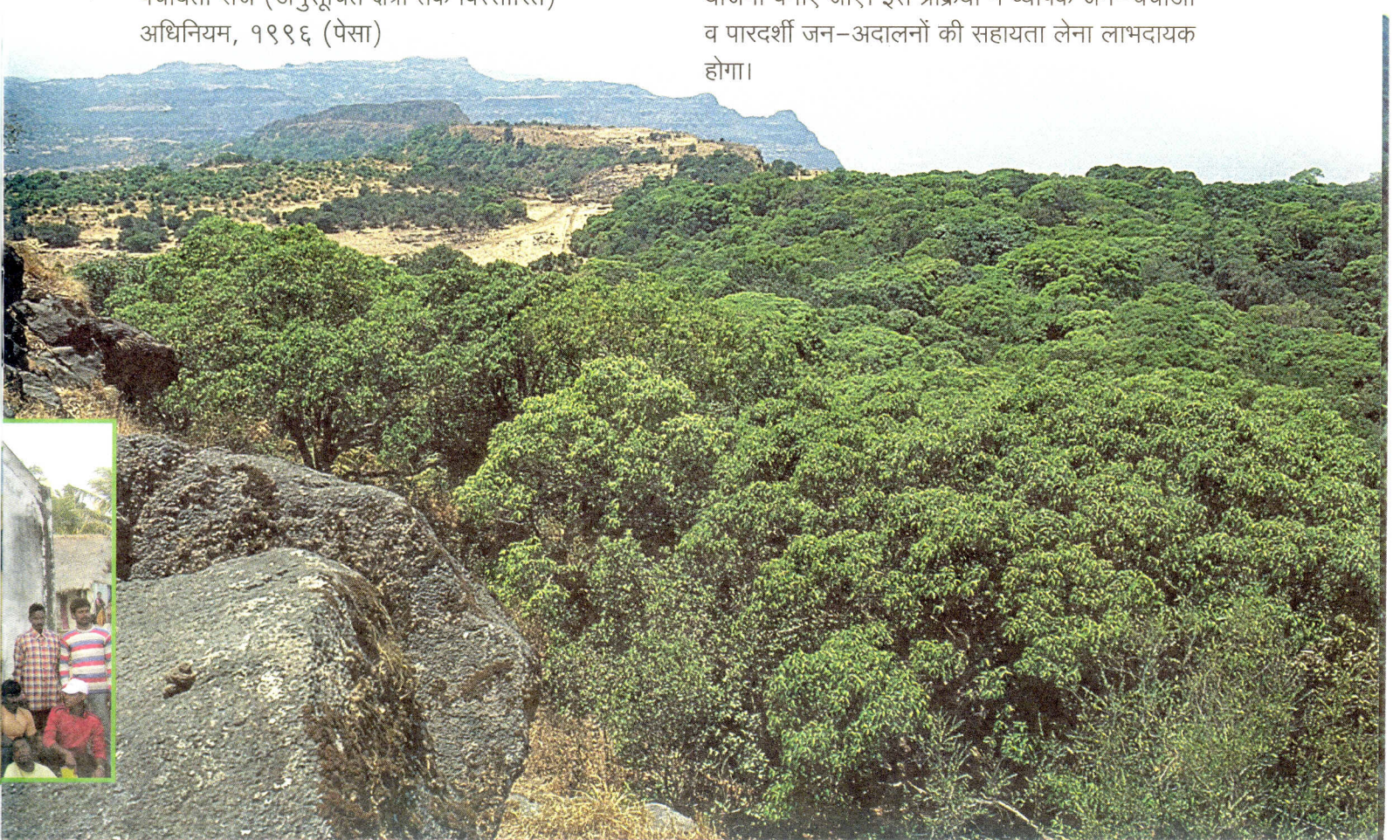

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र

राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हाल ही में सामुदायिक संरक्षण को मान्यता मिली है। २००३ व २००४ के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के बाद संरक्षण में लोगों की भागेदारी पर भी काफी ज़ोर दिया जा रहा है।

५वीं वर्ल्ड पार्क कान्ग्रेस (WPC), वर्ष २००३ में वर्ल्ड कन्ज़रवेशन यूनियन (IUCN) द्वारा डरबन, दक्षिण अफ्रीका में आयोजित की गई थी। यह संरक्षणकर्ताओं का सबसे बड़ा सम्मेलन था। इसमें ४०० से अधिक लोगों ने भाग लिया था। इसकी मुख्य उपलब्धियां थीं डरबन एकार्ड एंड एक्शन प्लैन और मैसेज टू द कन्वैनशन आन बायोलौजिकल डायवर्सिटि। इन दो दस्तावेज़ों में ३० से अधिक सुझाव दिए गए हैं। इसमें पर्यटन, प्रशासन, आध्यात्मिक मूल्यों, जैंडर, गरीबी, 'समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र' व 'संरक्षित क्षेत्रों से पलायनरत/आदिवासी समुदायों' की भूमिका शामिल है। इन सभी में लोगों की भूमिका होने पर अत्यधिक ज़ोर दिया गया है। साथ ही संरक्षण में भागीदारी के लिए लोगों के परंपरागत व भूमि-विशेष अधिकारों को मान्यता देने व उन्हें निर्णय लेने की शक्तियां देने पर ज़ोर दिया गया है। विश्व स्तर पर 'समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों' को संरक्षण के लिए एक उचित मॉडल स्वीकारा जाना इस सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि रही। (www.iucn.org/themes/wcpa/wpc2003/index.htm)

कन्वैन्शन आन बायोलौजिकल डायवर्सिटी (CBD) के सहभागियों की सातवीं गोष्ठी फरवरी २००४ में कुआला लम्पूर में आयोजित की गई। इसमें काफी देशों की सरकारों ने अभ्यारण्यों में संयुक्त संरक्षण व सामुदायिक अधिकारों को मान्यता देने के अपनी प्रतिबद्धता जताई। इसकी मुख्य उपलब्धियों में संरक्षित क्षेत्रों के लिए एक विस्तृत व महत्वाकांशी प्रोग्राम आफ वर्क (काम करने की योजना) बनाई गई। इस योजना में प्रशासन, सहभागिता, संसाधनों के तुल्यात्मक इस्तेमाल के विषय में अनेक प्रशंसनीय प्रावधान हैं। इस योजना के अंतर्गत समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक तंत्रों को सरकारी मान्यता देना ज़रूरी है। चूंकि हस्ताक्षरकर्ता देश CBD के अंतर्गत कानूनी रूप से बाध्य हैं, यह योजना समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को मान्यता व सहयोग देने के लिए अत्यंत आवश्यक सिद्ध हो सकती है। (www.biodiv.org/meetings/cop-07/default.asp)

IUCN के अंतर्गत एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन, थीम आन इन्डिजीनस एंड लोकल कम्युनिटीज़, इक्विटि एंड प्रोटैक्टेड एरियाज़ (TILCEPA) की इस संदर्भ में केन्द्रिय भूमिका रही है। TILCEPA दो आयोगों, संरक्षित क्षेत्रों का विश्व आयोग (WCPA) और पर्यावरण, आर्थिक व सामाजिक नीति पर आयोग (CEESP) की एक कार्यकारिणी है। TILCEPA के माध्यम से स्थानीय लोगों को संरक्षण में मान्यता देने की ज़ोरदार व कालत की गई है। समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों के बारे में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जागरुकता बढ़ाने के साथसाथ CBD के प्रोग्राम आफ वर्क में भी कुछ विशेष मुद्दे डलवाने में TILCEPA ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही, इन विषयों पर जागरुकता फैलाने के लिए विभिन्न भाषाओं में लेखन सामग्री भी TILCEPA ने छापी है। (www.tilcepa.org)

कानूनी आवश्यकताएं

कानूनों में उचित बदलाव और उनकी विस्तृत व्याख्या होनी चाहिए, जिससे समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को बढ़ावा मिले और विभिन्न प्रकार के सामुदायिक संस्थागत ढांचों को सशक्त किया जाए।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों व उनमें पाए जाने वाले संसाधनों पर लोगों के अधिकार व ज़िम्मेदारीपूर्ण स्वामित्व को स्पष्ट किया जाए।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों से संबंधित परंपरागत कानूनों को मान्यता दी जाए।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को सरकारी अभ्यारण्यों की श्रेणी में गिना जाए।

आवश्यक तकनीकी व आर्थिक सहयोग (जो लोगों की ज़रूरतों के अनुरूप हो)

पारदर्शी हिसाब-किताब रखने, बिक्री, प्रबंधन व नेतृत्व संबंधी क्षमताओं के विकास के लिए प्रशिक्षण दिया जाए।

संसाधनों/वन्यजीवों के प्रबंधन व निरीक्षण के लिए प्रशिक्षण दिया जाए।

जहां लोगों को आवश्यकता हो वहां, समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों को स्थापित करने व कायम रखने के लिए, आर्थिक सहयोग दिया जाए।

समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों के बीच आपसी विचार-विमर्श के लिए क्षेत्रीय नैटवर्क बनाने में सहयोग दिया जाए।

आजीविका व आर्थिक ज़रूरतों की पूर्ति के लिए सतत् विकल्पों को प्रोत्साहन (जैसे, गैर-काष्ठीय वनोपज व जल संसाधनों को विकसित करना व बेचना, समुदाय आधारित ईको पर्यटन आदि) दिया जाए।

उचित कानून व नीतियों के विषय में प्रशिक्षण दिया जाए।

आवश्यक सामाजिक कार्यक्रम

लोगों के लिए जागरुकता व प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाएं – जिसमें राष्ट्रीय व विश्व स्तर पर जैवविविधता संरक्षण की आवश्यकता, पिछड़े तबके के

दाएं
राजस्थान के भावता कोल्याला गांव के संरक्षित वनों के लिये गांव वालों द्वारा निर्धारित नियम

पृष्ठ ११ इन्सेट
उत्तराखण्ड के बीज बचाओ आंदोलन से जुड़े किसानों द्वारा बचाए जा रहे बीजों की प्रजातिया

पृष्ठ ११
उत्तराखण्ड के जरधारगांव के युवा व गांव का संरक्षित वन

अंतिम पृष्ठ
उड़ीसा का मंगलाजोड़ी गांव सर्दियों में आनेवाले पक्षियों के लिये एक सुरक्षित स्वर्ग

अंतिम पृष्ठ इन्सेट
मंगलाजोड़ी गांव के पक्षी संरक्षण से जुड़े सदस्य, वाइल्ड उड़ीसा नामक संस्था के सदस्यों के साथ

लोगों आदि की सामाजिक असमानता व उससे संबंधित विषयों, स्थानीय प्रशासनिक मुद्दे व संसाधनों और संरक्षित क्षेत्रों में अधिकार के मुद्दे शामिल हों।
नई पीढ़ी में संरक्षण व अन्य सामाजिक ज़िम्मेदारियों व नेतृत्व की भावना बढ़ाने के लिए स्थानीय संरक्षण करने वाली संस्थाओं को सहयोग दिया जाए।

स्थानीय ज्ञान व प्रबंधन प्रक्रियाओं को बढ़ावा दिया जाए और उनका दस्तावेज़ीकरण किया जाए।
समुदायों द्वारा संरक्षण के विशिष्ट व उत्कृष्ट प्रयासों को प्रोत्साहन दिया जाए।

कुछ अन्य उपयोगी प्रकाशन

बालासिनोरवाला, टी., कोठारी, ए. और गोयल, एम.। पार्टिसिपेटरी कन्ज़रवेशन: पैरडाईम शिफ्ट्स इन इनटरनैशनल पौलिसी। TILCEPA/IUCN/कल्पवृक्ष, पुणे, २००४।

बोरिनी फेयेरबैंड, जी., डे शरबिनिन, ए., दियॉ, सी., ओविडो, जी. और पैन्स्की, डी. संपादित। पौलिसी मैटर्स, १२, स्पैशल इशू ऑन कम्यूनिटि एम्पावरमैंट फार कन्ज़रवेशन। CEESP-WCPA इश्यू २००३।

बोरिनी फेयेरबैंड, जी., कोठारी, ए., ओविडो, जी.। इन्डिजीनस एंड लोकल कम्यूनिटीज़ एंड प्रोटैक्टेड एरियाज़। टुवर्ड्स इक्विटि एंड एनहैन्स्ड कन्ज़रवेशन। IUCN/WCPA बैस्ट प्रैक्टिस सीरीज़ नं. ११, ग्लैंड (स्विट्ज़रलैंड) एंड केम्ब्रिज (युनाइटेड किंगडम), २००४।

गोखले, वाई.। स्टडीज़ ऑन रोल आफ सेकरेड ग्रोव इन्स्टिट्यूशन इन कन्ज़रवेशन आफ प्लांट्स। अप्रकाशित पी.एच.डी. थीसिस, मुंबई विश्वविद्यालय, भारत, २००२।

लौकवुड, एम., वौरब्बायज़, जी. और कोठारी, ए.। मैनेजिंग प्रोटैक्टेड एरियाज़: ए ग्लोबल गाइड। अर्थस्कैन, लंदन, २००६।

कोठारी, ए., पाठक, एन. और वानिया, एफ.। व्हेयर कम्यूनिटीज़ केयर : कम्यूनिटी बेस्ड वाईल्ड लाईफ एंड ईकोसिस्टम मैनेजमैंट इन साउथ एशिया। कल्पवृक्ष, पुणे और IIED, लंदन, २०००।

पाठक, एन. और गौर-ब्रूम, वी.। ट्राइबल सैल्फ रूल एंड नैचुरल रिसोर्स मैनेजमैंट: कम्यूनिटी बेस्ड कन्ज़रवेशन एट मेंढा-लेखा, महाराष्ट्र, इंडिया। कल्पवृक्ष, पुणे और IIED, लंदन, २००१।

पाठक, एन. और कोठारी, ए.। सामुदायिक संरक्षण प्रयासों पर लिखे अनुच्छेदों की श्रंखला जो बौम्बे नैचुरल हिस्ट्री सोसाइटी, मुंबई की हौर्नबिल, में प्रकाशित की गई, २००५-२००६ :

- कम्यूनिटीज़ ऑल्सो कन्ज़र्व, जुलाई-सितंबर, २००५
- व्हेयर ब्लैकबक्स रोम, टरटल्स ब्रीड एंड बर्ड्स फीयर नो मोर, जनवरी-मार्च, २००६
- बर्ड्स एंड पीपल, ए ट्रैडिशनल एसोसिएशन, अप्रैल-जून, २००६

पाठक, एन., कोठारी, ए. और बालासिनोरवाला, टी.। द नागा ट्रान्सफौरमेशन: कन्ज़रवेशन बाय कम्यूनिटीज़ इन नागालैंड, इंडिया। एक पर्चा। कल्पवृक्ष, पुणे, २००६।

श्रेष्ठ, एस. और देवीदास, एस.। फौरेस्ट रिवाइवल एंड वाटर हारवैस्टिंग : कम्यूनिटी बेस्ड कन्ज़रवेशन इन भौंटा-कोलयाला, राजस्थान, इंडिया। कल्पवृक्ष, पुणे और IIED, लंदन, २००१।

कम्यूनिटीज़ एंड प्रोटैक्टेड एरियाज़: पेपर्स प्रिज़ैन्टैड एट द ५थ वर्ल्ड पार्क्स कान्ग्रेस। TILCEPA डरबन, २००३ के संदर्भ में १४० दस्तावेज जो दो सी.डी. में संकलित किए गए हैं।

ब्रीफिंग नोट्स एंड इनफौरमेशन पेपर्स : TILCEPA। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में वितरण के लिए तैयार किये गए संक्षिप्त टिप्पणियों का संकलन जो http://www.iucn.org/themes/ceesp/Wkg_grp/TILCEPA पर उपलब्ध है।

- *कम्यूनिटी कन्ज़र्वड एरियाज़: अ बोल्ड फ्रन्टीयर फार कन्ज़रवेशन*
- *मोबाइल पीपल एंड कन्ज़रवेशन*
- *गवरनैन्स आफ नैचुरल रिर्सोसिस*

और अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :
नीमा पाठक
कल्पवृक्ष, अपार्टमेन्ट ५ श्री दत्ताकृपा,
९०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे-४११००४
फोन: ०२०-२५६७५४५०,
फोन/फैक्स : ०२०-२५६५४२३९
या neema.pb@gmail.com पर लिखें

इस पुस्तिका पर कोई कॅपीराइट नही है लेकिन इसके किसी भी इस्तेमाल में लेखक व छापक के नाम कृपया दें।

इसकी पहली; अंग्रेज़ी पुस्तिका BNHS व IBCN के मदद से छापी गई थी।

संपादक	एरिका तारापोरवाला
डिज़ाइन	विपूल सांगोइ, रेन डिज़ाइन
फोटोग्राफ	आशीष कोठारी (बजाय पृष्ठ ४), असद राहमानी (पृष्ठ ४)
अनुवाद	निधि अग्रवाल
निर्माण	कल्पवृक्ष
ईमेल	kvoutreach@gmail.com
वेबसाइट	www.kalpavriksh.org
आर्थिक सहयोग	मिज़रिओर, जर्मनी

Print: Mudra, mudraoffset@eth.net